बाल साहित्य
भक्त प्रहलाद

भक्त प्रह्लाद

मानवीय समाज में अनन्त काल से दो शक्तियों के बीच निरन्तर, अबाधित व मूलभूत संघर्ष रहा है। ये शक्तियाँ हैं – प्रकाश व अंधकार, अच्छाई व बुराई, सदाचार व दुराचार आदि। इन शक्तियों को देव-दैत्य, सुर-असुर जैसे नामकरण भी दिये जाते हैं।

विष्णु पुराण में वर्णित एक कथा के अनुसार जब आसुरी शक्तियाँ प्रबल हो रही थीं तो समाज में विभिन्न प्रकार की बुराइयाँ व कुरीतियाँ पनपने लगीं जिससे सामान्य वर्ग में हाहाकार मच गया। सन्मार्ग पर चलने वाले लोगों पर आसुरी शक्तियों द्वारा भीषण अत्याचार होने लगे। ऐसे ही एक असुरराज थे हिरण्यकश्यप। वह बहुत क्रूर राक्षस था। उसने आदेश दिया था कि उसके राज्य में केवल उसी की ही पूजा होगी और कोई भी विष्णु की पूजा नहीं करेगा। लोग उससे बहुत भयभीत थे। उसने ब्रह्मा से एक विचित्र वरदान प्राप्त किया था कि उसे कोई भी प्राणी मार नहीं सकेगा। उसकी मृत्यु न घर के भीतर और न ही बाहर होगी। उसे दिन या रात्रि में भी मृत्यु नहीं आएगी। उसे कोई शस्त्र भी मार नहीं सकेगा और उसकी मृत्यु न आकाश में होगी और न ही पृथ्वी पर।

स्वाभाविक है ब्रह्मा से ऐसा अमरत्व का वरदान प्राप्त कर हिरण्यकश्यप का अहंकार बहुत बढ़ गया। वह देवताओं को बहुत कष्ट और यातनायें देने लगा। भगवान विष्णु का नाम सुनते ही वह क्रोधित हो जाता था। उसकी क्रूरता और दमनकारी सत्ता से

विश्व को मुक्त कराने में देवता भी असमर्थ व असहाय थे।

जन्म व बाल्यकाल

हिरण्यकश्यप के घर एक विलक्षण बालक ने जन्म लिया जिसका नाम प्रह्लाद रखा गया। धीरे-धीरे प्रह्लाद बड़ा हुआ। वह बहुत संस्कारी, संवेदनशील और भगवान विष्णु का परम भक्त था। प्रह्लाद का स्वभाव अपने पिता से एकदम विपरीत था। उसकी परमेश्वर में अगाध आस्था थी। हिरण्यकश्यप ने उसके ईश्वर प्रेम को खंडित करने का बहुत प्रयास किया परन्तु सब व्यर्थ गया। अन्ततः उसे मृत्यु दण्ड दिया गया। दण्ड के अनुसार हिरण्यकश्यप की बहन होलिका जिसे अग्नि से न जलने का वरदान प्राप्त था, प्रह्लाद को लेकर अग्नि में बैठ गई। होलिका तो आग में भस्म हो गई परन्तु प्रह्लाद जीवित बच गया। इसके पश्चात् भगवान विष्णु नरसिंह का अवतार लेकर प्रकट हुये व उन्होंने हिरण्यकश्यप का अन्त कर विश्व को हिरण्यकश्यप के घोर अत्याचारों से मुक्ति दिलाई। इसलिए भक्त प्रह्लाद की कथा होली पर्व से जुड़ी हुई है। इसी अवसर पर होलिका दहन व होली का पावन पर्व मनाया जाता है।

तुमने गुरुजनों से क्या सीखा?

प्रह्लाद एक दिन अपने गुरु की कुटिया के सामने विचारमग्न घूम रहा था। उसके मन को एक प्रश्न विचलित कर रहा था, 'कौन मित्र है और कौन शत्रु?' राक्षसों के अन्य पुत्रों के साथ प्रह्लाद की शिक्षा-दीक्षा राक्षसों के गुरु शुक्राचार्य के पास हुई थी। शुक्राचार्य के दोनों पुत्र-चन्द और अमर्क भी वहीं शिक्षा प्राप्त करते थे।

प्रह्लाद के शिष्ट, सदाचारी स्वभाव से उसके गुरुजन बहुत प्रसन्न थे। यद्यपि वह उस दानव राज हिरण्यकश्यप का पुत्र था जिसने देवताओं को पराजित किया था एवं ब्रह्मा को प्रसन्न कर अपने लिये अमरत्व का वरदान प्राप्त किया था। वह गुरुजनों की शिक्षा को बड़े ध्यान से सुनता था, लेकिन उसके सामने सदैव एक प्रश्न आता था कि भगवान तो सर्वत्र विद्यमान है और हम सभी उसके अंश हैं तो फिर यह मित्र व शत्रु का भेद क्यों हो? भय भी क्यों हो?

प्रह्लाद इस विचार में डूबा था कि पिता हिरण्यकश्यप ने प्रह्लाद से पूछा, 'बेटा, तुमने अपने गुरुजनों से क्या सीखा?'

प्रह्लाद ने उत्तर दिया, 'पिता जी, उन्होंने मुझे बताया कि हमें अपने मित्रों व शत्रुओं से कैसा व्यवहार करना चाहिये? परन्तु मुझे यह अच्छा नहीं लगता। मैं तो वन में जाकर प्रभु का ध्यान करूँगा।'

प्रह्लाद का उत्तर सुनते ही हिरण्यकश्यप को क्रोध आ गया। वह सोचने लगा कि 'कोई दुष्ट उसके कान में गलत संदेश डाल रहा है। भगवान मेरा कट्टर शत्रु है और यह बेटा उसका ध्यान करना चाहता है?'

फिर हिरण्यकश्यप ने गुरुजनों को बुला कर उनसे पूछा – 'क्या आपकी पाठशाला में कोई शत्रु घुस आया है जो मेरे नन्हें पुत्र के मन में विष्णु के प्रति श्रद्धा का भाव जगा कर उसके जीवन में विष घोल रहा है? आप सावधान रहें और प्रहलाद को सही रास्ते पर लाएँ।' ऐसा कहते हुए हिरण्यकश्यप ने गुरुजनों से अपनी चिन्ता व्यक्त की।

इसे दण्ड देना ही होगा

गुरुजनों ने प्रह्लाद को बुला कर पूछा – 'बेटे, यह बताओ कि भगवान विष्णु के प्रति भक्ति व श्रृद्धा – ऐसे विचार तुम्हारे मन में कहाँ से आए? क्या किसी ने तुम्हें यह सिखाया है या यह तुम्हारे अपने विचार हैं?' प्रह्लाद ने कहा – 'गुरु जी, आप क्या कह रहे हैं, मेरी समझ में नहीं आता। भगवान नारायण की कृपा से मैं सही-गलत, मित्र-शत्रु जैसे भावों से मुक्त हूँ। मैंने यह स्वयं ही सीखा है, मुझे किसी ने नहीं सिखाया।' जब गुरुजनों ने प्रह्लाद का यह उत्तर सुना तो उन्होंने उसके बारे में सभी आशाएँ छोड़ दीं।

उन्होंने कहा – 'प्रह्लाद, तुम तो राक्षसवंश पर कलंक हो। क्या तुम इतना भी नहीं जानते कि यही श्रीहरि राक्षसकुल का दुश्मन है। वह उन्हें समाप्त करने पर तुला है। इसी ने तुम्हारे चाचा की हत्या की। वह राक्षसों के कट्टर विरोधी हैं।' इस प्रकार गुरुजनों ने प्रह्लाद को समझाने का प्रयास किया। उन्हें ऐसा लगा कि यदि प्रह्लाद को नये विषय पढ़ाये जायें तो वह श्रीहरि को भूल जाएगा।

उन्होंने योजनापूर्वक प्रह्लाद को राजकाज व शासन चलाने के सिद्धान्त सिखाये। शत्रुओं को बल-छल पूर्वक परास्त करने के मार्ग बताए। दूसरों का विश्वास जीतने के लिये उपहार देने की रीति समझायी। शत्रुओं के बीच आपसी झगड़े कराने के सूत्र बताए और अंततः बलपूर्वक अपना पक्ष थोपने का मार्ग भी सिखाया। उन्हें लगा कि इन विषयों के अध्ययन से प्रह्लाद का मन भगवान विष्णु से दूर हो जाएगा। गुरुजनों के मन में अभी भी शंका थी। अतः राजा हिरण्यकश्यप के सामने उसे भेजने से पूर्व वह उसे उसकी माता

कयाधु के पास ले गये। माता कयाधु ने भी अपने पुत्र को समझाया।

जब प्रह्लाद अपने पिता से मिला तो उसने आदरपूर्वक उनके चरण-स्पर्श किये। हिरण्यकश्यप ने अपने पुत्र से पूछा – 'बेटा, सबसे बड़ी बात तुमने कौन-सी सीखी? प्रह्लाद ने अपने अंतर्मन के विचारों को प्रकट किया।

प्रह्लाद ने कहा – 'पिता जी, कान से श्रीहरि के पवित्र नाम को सुनना, मुँह में उनका नाम जपना, मन में उन्हीं का विचार, उन्हीं की पूजा करना, श्रद्धा से स्वयं को उन्हीं के चरणों में समर्पित कर देना, यही सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है।'

पुत्र के उद्‌गार सुन कर हिरण्यकश्यप का रोम रोम क्रोधित हो उठा। उसने गुरुजनों को बुलाया और डाँटा, 'कपटी ब्राह्मणों, तुमने मेरे पुत्र को ये सब बातें सिखाकर उसका सत्यानाश कर दिया है। लगता है तुम मेरे शत्रुओं से मिल गये हो और तुम्हें मेरा कोई भय नहीं है।'

गुरुओं का मन ग्लानि और भय से भर गया। उन्होंने काँपते हुए राजा से कहा, 'महाराज, हमें क्षमा करें। यह सब हमारा सिखाया हुआ नहीं है। स्वयं प्रह्लाद का यह कहना है कि यह सब कुछ उसने स्वयं सीखा है।'

अब राजा क्रोध से प्रह्लाद पर बरसने लगा, 'अरे मूर्ख! तूने यह अपवित्र बातें कहाँ से सीखीं?' प्रह्लाद के मन में कोई भय नहीं था। उसने साहसपूर्वक कहा – 'पिता जी, मैंने जो कुछ कहा वह अपवित्र नहीं है और न ही किसी ने मुझे यह सिखाया है। भगवान् विष्णु की कृपा से मुझे यह ज्ञान प्राप्त हुआ है।'

हिरण्यकश्यप क्रोध से काँपने लगा। उसने सेवकों से कहा, 'इस दुष्ट को तुरन्त मेरे सामने से हटा दो। इसे मार डालो। मेरे कुल में उत्पन्न यह श्रापित बेटा सारे कुल का नाश कर देगा।'

राजा की बात सुनकर सभी सेवक अवाक् रह गये कि क्या राजकुमार की हत्या कर दी जाये? लेकिन राजा की अवज्ञा करने का साहस उनमें नहीं था। अतः वे प्रह्लाद के पास पहुँचे। प्रह्लाद अविचलित था। भगवान विष्णु का ध्यान करते हुए वह दृढ़ खड़ा था। भाले की नोंक से राक्षसों ने उसे छेदना चाहा, किन्तु प्रह्लाद को कुछ नहीं हुआ। अन्य अस्त्र भी चलाये गये परन्तु प्रह्लाद का कुछ भी नहीं बिगड़ा। यह सब देखकर राजा ने पुनः आदेश दिया, 'इसे हाथियों के पैरों तले कुचलवा दो।' प्रह्लाद पर हाथियों के पैरों का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह शांतचित्त और भयमुक्त था।

हिरण्यकश्यप ने प्रह्लाद को नदी में फैंकने का आदेश दिया। किन्तु नदी में आनंद से तैरते हुए प्रह्लाद श्रीहरि के नाम का गुणगान करता रहा।

हिरण्यकश्यप के लिये यह अपमान असहनीय था। अब प्रह्लाद को विष दिया गया। लेकिन श्रीहरि की अनुकम्पा से विष अमृत बन गया। प्रह्लाद को पहाड़ की चोटी से फिंकवाया गया, उसे भस्म करने के लिये अग्नि में फैंक दिया गया परन्तु फिर भी वह बच गया।

यह सब देखकर हिरण्यकश्यप पागल-सा हो गया। वह चीखा, 'इसमें इतनी आश्चर्यजनक शक्तियाँ कैसे आयीं? यह मेरा बेटा ही होने योग्य है, परन्तु यह मेरे शत्रु विष्णु के प्रति निष्ठावान क्यों है?

विष्णु ने मेरे भ्राता हिरण्याक्ष को मार डाला और मेरा यह नालायक बेटा उसकी पूजा करता है। मैं क्या करूँ?' इस विचार से हिरण्यकश्यप बिल्कुल हताश हो गया।

मुझे यह नारद ने सिखाया

बाद में शुक्राचार्य के पुत्र हिरण्यकश्यप से मिले और उन्होंने कहा – 'हे दानवराज, तीनों लोकों में ऐसा कोई शेष नहीं जिसे तुमने पराजित नहीं किया। तुम इतने शक्तिशाली हो, फिर इस मासूम बच्चे से आपको इतनी चिन्ता क्यों है? थोड़े ही समय में हमारे पिता गुरु शुक्राचार्य यहाँ आयेंगे। वे इस बालक को समझा कर उसकी वृत्ति में परिवर्तन कर देंगे। अभी प्रह्लाद बहुत छोटा है। बड़ा होने पर वह ठीक हो जाएगा। तब तक इस बालक को हमारे पास रहने दें।' राजा ने उनकी बात मान ली। प्रह्लाद पुनः गुरुजनों के पास आ गया।

एक बार गुरुजन किसी काम से बाहर गये हुये थे। छात्रों ने सोचा कि कोई खेल खेला जाये। उन्होंने प्रह्लाद को भी अपने साथ ले लिया। प्रह्लाद ने कहा – 'मित्रों, मानव-जीवन एक अमूल्य देन है। हमें उसका सदुपयोग करना चाहिये। इसके लिये हमें श्रीहरि की भक्ति करनी चाहिये। भक्ति से भगवान प्रसन्न होते हैं और वे हमें सब कुछ दे सकते हैं। मुनि नारद ने मुझे यह सब बताया है। हम जो शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, वह तुच्छ है। इससे कोई लाभ नहीं होगा।'

प्रह्लाद की बातें सुनकर सभी छात्र चकित रह गये। उन्होंने पूछा – 'प्रहलाद, तुम तो हमेशा हमारे साथ रहते हो, फिर तुम्हारी

नारदमुनि से भेंट कहाँ हुई? उन्होंने तुम्हें कब यह बताया?' तब प्रह्लाद ने उन्हें अपना भूतकाल बताया -

'बहुत पहले की बात है, मेरे पिता मान्दार पर्वत पर ध्यान-तप करने गये थे। उस समय देवताओं ने सोचा कि राक्षसों पर आक्रमण करने के लिये यह उत्तम समय है। राक्षसों का राजा भी वहाँ नहीं था। देवगणों ने युद्ध में राक्षसों को पराजित कर उनके राजमहल को लूटा। देवेन्द्र मेरी माता कयाधु को युद्धबन्दी बनाकर ले जा रहे थे। मेरी माता बहुत विलाप कर रही थी। संयोग से नारद मार्ग में मिल गये। उन्होंने देवेन्द्र से कहा–'यह कैसा अन्याय है? क्या यह सब करने का तुम्हें अधिकार है? वह पवित्र महिला है। उसे तुम ऐसे नहीं ले जा सकते। उसे तुरन्त छोड़ दो।'

देवेन्द्र ने कहा - 'महाराज, मेरे मन में इस महिला के प्रति कोई दुर्भावना नहीं है। वह इस समय गर्भवती है। मुझे भय है कि इसकी संतान भी अपने पिता के समान हमें कष्ट देगी। मैं इसे घर ले जाऊँगा। जब इसका बच्चा होगा तो मैं उसकी हत्या कर दूँगा और फिर इसे वापस भेज दूँगा।'

नारद मुनि हँसने लगे। वे कहने लगे - 'मित्र, तुझे वास्तविकता का पता नहीं है। इससे होने वाला पुत्र ईश्वर का भक्त होगा। तुम उसे मार नहीं सकोगे। क्या देवगण ऐसा घृणित कार्य करेंगे?

नारद मुनि के यह वचन सुनकर इन्द्र देव लज्जित हुए। उन्होंने मेरी माता के चरण छुए और उसे छोड़ दिया। नारद मुनि मेरी माता को अपने आश्रम में ले गये। वहाँ नारद मुनि ने माँ को भागवत-

धर्म और भक्ति का मार्ग सिखाया। तब मैं अपनी माता की कोख में था। मैंने इस शिक्षा-दीक्षा को भली-भाँति सुना। जब मेरे पिता लौटे तो मेरी माता भी राजमहल में आयी। समय के साथ मेरी माँ भागवत धर्म को भूल गयी। लेकिन मेरे मन पर उसका गहरा प्रतिबिम्ब रहा।'

प्रह्लाद की कहानी सुनकर उसके मित्र प्रसन्न हुए। अब उन्हें भी भागवत धर्म के बारे में जिज्ञासा होने लगी। उन्होंने प्रह्लाद से पूछा – 'तुम जिस भागवत धर्म की बात करते हो, वह क्या है?' प्रह्लाद ने बताया कि वह भगवान की कृपा प्राप्त करने का सरल और उत्तम मार्ग है। हम सभी भगवान् की भक्ति करें, उसी का चिन्तन करें। ऐसा विचार करें कि सब कुछ उसी का है और उसी की इच्छा के अनुसार सब कार्य करें व अच्छे लोगों की संगति में रहें, इससे हमें बहुत प्रसन्नता और शान्ति मिलेगी। यही नारद मुनि ने मुझे सिखाया है।'

सभी मित्रों को ये बातें अच्छी लगीं और वे भी भगवत् भक्त बन गये।

वराह के रूप में विष्णु

यह पूरी घटना जब राजा हिरण्यकश्यप व गुरुजनों को पता चली तो वे सब क्रोधित हो गये। सभी छात्र भगवत्-भक्त बन गये थे। गुरुजन प्रह्लाद के पास गये और उससे कहा – 'क्या तुमने यह अच्छा काम किया है? क्या तुम नहीं जानते कि श्रीहरि तुम्हारे पिता के शत्रु हैं? क्या इसी श्रीहरि ने वराह का रूप लेकर तुम्हारे चाचा को नहीं मारा था?'

प्रह्लाद ने गुरुजनों से कहा – 'कृपया मुझे वह कथा सुनाइये।' गुरुजनों ने सभी छात्रों को भगवान् नारायण की कथा सुनायी –

'जब हिरण्यकश्यप और उसके छोटे भाई हिरण्याक्ष का जन्म हुआ तो सभी देवता भय से काँपने लगे। ये दोनों बालक बड़े हुए। उनका शरीर विशाल और शक्तिशाली था। उन्होंने देवताओं के राज्य स्वर्ग पर आक्रमण कर दिया। हिरण्याक्ष को देख देवता भयभीत होकर इधर-उधर छिपने लगे। हिरण्याक्ष ने समुद्र के देवता वरुण को युद्ध के लिये चुनौती दी। वरुण ने कहा – 'हे राजा, मैं तुम से युद्ध नहीं करना चाहता। तुम से कौन लड़ सकता है? भगवान् ही तुमसे लड़ सकते हैं।' यह उत्तर सुन हिरण्याक्ष श्रीहरि को खोजने निकला।

इसी समय परब्रह्म परमेश्वर की नासिका से एक वराह बाहर निकला। वह बहुत छोटा था। लेकिन देखते ही देखते वह बढ़ने लगा और बढ़ते-बढ़ते पहाड़-सा हो गया। इस समय पृथ्वी समुद्र में डूबी हुई थी। इसी वराह ने पृथ्वी को अपनी सूंड से उठाया और उसे पानी की सतह पर लाया। वह पृथ्वी को ब्रह्मा को अर्पित करना चाहता था। हिरण्याक्ष इस विशालकाय वराह को देखकर चकित रह गया।

अहंकारी हिरण्याक्ष ने वराह से कहा – 'हे मूर्ख! पृथ्वी को अपनी सूंड से उतार दो। वह जहाँ थी उसे वहीं रख दो और चले जाओ। अब मुझे पता चल गया है कि तुम कौन हो। तुम वराह के रूप में महाविष्णु ही हो। मैं तुम्हारा सिर तोड़ दूँगा।' ऐसा कहते हुए हिरण्याक्ष ने वराह को रोकना चाहा। हिरण्याक्ष के उग्र रूप को देखकर पृथ्वी काँपने लगी। लेकिन वराह ने इन बातों की ओर ध्यान नहीं दिया। वह समुद्र से ऊपर उठने लगा।

हिरण्याक्ष और जोर से चिल्लाया, 'वराह, तुझे मैं अभी देखता हूँ।' हिरण्याक्ष के अपमानजनक शब्द सुनकर वराह क्रोधित हो उठा। उसने पृथ्वी को एक ओर रखा और हिरण्याक्ष को युद्ध के लिये ललकारा – 'तुम्हारा अहंकार तुम्हें मृत्यु के मुँह में ले जाएगा। अब युद्ध के लिये तैयार हो जाओ।'

दोनों के बीच घमासान युद्ध हुआ। ब्रह्मा की इच्छा थी कि यह युद्ध रात्रि होने से पूर्व समाप्त हो जाये क्योंकि रात्रि के समय राक्षसों की शक्ति बढ़ जाती है। उसने हिरण्याक्ष पर चक्र फैंका। यह चक्र हिरण्याक्ष के सभी शस्त्रों को नष्ट करने लगा। अन्तत: वराह ने हिरण्याक्ष पर शक्तिशाली प्रहार कर उसे धराशायी कर दिया।

'हिरण्याक्ष की मृत्यु से उसकी माँ, पत्नी वृषधाभानु व बच्चे शोक में डूब गये। हमारे स्वामी हिरण्यकश्यप भी दुखी थे। लेकिन उन्होंने सभी को सान्त्वना देते हुये कहा – 'एक दिन सभी जीवों को मरना है। अत: विलाप करना व्यर्थ है। मेरा भाई वीर योद्धा था। वह लड़ा और वीरोचित मृत्यु को प्राप्त हुआ। अत: उसकी मृत्यु पर शोक न करें।'

इस घटना से पूर्व भी हिरण्यकश्यप विष्णु से द्वेष करता था। अब तो विष्णु के प्रति उसका वैमनस्य भाव और अधिक बढ़ गया। उसने अपने सेनापतियों इल्वल व नमुचि को आदेश दिया – 'विष्णु-भक्तों को अधिक से अधिक कष्ट दो। जो भगवान की भक्ति करते हैं, उन्हें समाप्त कर दो।' 'हिरण्यकश्यप के आदेश पर उसके सैनिकों ने देवभक्तों के नगरों को जला दिया। मंदिरों को ध्वस्त कर दिया।

गुरुजनों ने राक्षसों के पराक्रम की कहानी बहुत ही आनंदित होकर सुनायी। राक्षसों के कुकृत्यों की कथा सुनकर प्रह्लाद बहुत दु:खी हुआ। उसके मन में राक्षसों की प्रवृत्ति बदल देने का विचार आया।

हिरण्यकश्यप को वरदान

गुरुजनों ने कथा को जारी रखते हुये कहा – 'राजा हिरण्यकश्यप ने भगवान् की आराधना शुरु कर दी। मान्दार पर्वत पर जाकर उन्होंने अनेक वर्षों तक घोर तप किया। उनके शरीर से अग्नि निकलने लगी जिससे पूरा ब्रह्माण्ड प्रभावित हुआ। नदियाँ, समुद्र-सब उबलने लगे। पृथ्वी हिलने लगी। चारों ओर अग्नि फैलने लगी। देवता भय से काँपने लगे। सत्यलोक जाकर उन्होंने ब्रह्मा से अपनी सुरक्षा के लिए अनुरोध किया। ब्रह्मदेव प्रकट हुए और उन्होंने कहा – हे हिरण्यकश्यप! मैं तुम्हारी भक्ति और घोर तपस्या से संतुष्ट हूँ। मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। तुम जो चाहो सो वर माँग लो।'

ब्रह्मा ने हिरण्यकश्यप के शरीर पर पवित्र जल डाला। उसी क्षण उसका शरीर स्वर्ण सा दमकने लगा। उसकी आँखे कृतज्ञता से भर आयीं। उसने कहा – 'हे भगवान्, तुम तो इस अंधकारमय संसार के प्रकाशदीप हो। तुम सभी के सृष्टा, रक्षक और नष्ट करने वाले हो। तुम सर्वशक्तिमान् हो, सर्वज्ञ हो और कृपालु हो। ब्रह्मदेव ने हिरण्यकश्यप से घोर तप का कारण पूछा। हिरण्यकश्यप ने कहा – 'यदि तुम प्रसन्न हो तो मुझे ऐसा वर दो कि तुम्हारे द्वारा निर्मित कोई प्राणी मुझे मार न सकें। मुझे घर में और घर के बाहर भी मृत्यु न

पकड़ सके, कोई शस्त्र मुझे मार न सकें और मेरी मृत्यु न आकाश में हो और न पृथ्वी पर।" ऐसा कह कर हिरण्यकश्यप ने अमरत्व का वर माँग लिया। ब्रह्मा ने 'तथास्तु' कहा।

गुरुजनों ने आगे बताया - 'छात्रों, अभी तुमने राक्षसों में महापराक्रमी राजा हिरण्यकश्यप की सत्यकथा सुनी कि वह कितना शक्तिशाली है। वह तीनों लोकों को स्वामी है। ऐसे शक्तिशाली राजा से तुम्हें क्यों आपत्ति है? तुम दूसरे किसी धर्म का पालन क्यों करना चाहते हो? अन्य किसी भगवान् की भक्ति क्यों करना चाहते हो?'

इस पर प्रह्लाद ने कहा – गुरुवर, 'ब्रह्म से वर प्राप्त करने पर क्या दुष्कर्म करने की भी छूट मिल जाती है? और क्या ऐसा दुष्कर्म करने पर किसी दण्ड का प्रावधान नहीं है? महाविष्णु ब्रह्मा के भी स्वामी हैं। विश्वकल्याण केवल उनकी कृपा से ही हो सकता है। प्रह्लाद की बातें सुनकर सभी छात्रों ने सहमति जताई।'

शुक्राचार्य के पुत्रों ने देखा कि अब स्थिति उनके नियंत्रण के बाहर हो गयी है। उन्हें इस बात का एहसास हो गया कि वे प्रह्लाद का हृदय-परिवर्तन नहीं कर पाएँगे। वे सीधे हिरण्यकश्यप के पास पहुँचे और उन्हें सारी स्थिति बतला दी।

हिरण्यकश्यप ने उसी समय प्रह्लाद को बुलाया। उसे देखते ही हिरण्यकश्यप अग्नि की तरह बरसा, 'अरे कुलकलंक! तुमने अपने विचार अभी तक छोड़े नहीं हैं? मुझ से तीनों लोक भयभीत होते हैं, लेकिन तुम पुत्र होकर मेरी अवज्ञा करते हो?

प्रह्लाद ने विनम्रता से उत्तर दिया, 'पिता जी, श्रीहरि ने मुझे यह

साहस दिया है। श्रीहरि सर्वशक्तिमान हैं, ब्रह्माण्ड के स्वामी हैं। सभी लोगों को उनकी पूजा-अर्चना करनी चाहिए।'

खम्भे से महाविष्णु निकले

हिरण्यकश्यप जोर से चिल्लाया, 'अभागे पथभ्रष्ट बच्चे, मैं तीनों लोकों का स्वामी हूँ। कहाँ है तेरा भगवान्? मैं उसे अभी देख लेता हूँ।' प्रह्लाद ने विनम्रता से कहा, 'वह सर्वशक्तिमान सर्वत्र विद्यमान है।'

हिरण्यकश्यप - 'यदि वह सर्वत्र व्याप्त है तो इस खम्भे के सामने क्यों नहीं आता? मैं अभी तुझे मौत के घाट उतार देता हूँ। तू श्रीहरि की इतनी भक्ति करता है, देखता हूँ वह तुम्हारी सहायता के लिये आता है या नहीं?' हिरण्यकश्यप तलवार निकाल कर प्रहलाद पर प्रहार करने लगा। उसी समय भयंकर ध्वनि हुई मानो पूरा ब्रह्माण्ड ही नष्ट हो जायेगा। हिरण्यकश्यप भी वह ध्वनि सुनकर दहल गया। एकाएक नृसिंह के रूप में श्रीहरि सामने प्रकट हो गये। उनका सिर सिंह का और शरीर मनुष्य का था। उनकी विशालकाय आँखें, असंख्य हाथ, उनका पर्वत सा विराट व्यक्तित्व अत्यंत भयावह व मायावी लग रहा था।

जब यह भयंकर आकृति खम्भे से बाहर आयी तो हिरण्यकश्यप व समस्त दरबारी काँपने लगे।

हिरण्यकश्यप उसकी ओर देखने लगा। वह समझ गया कि यह तो स्वयं महाविष्णु हैं। इसी ने वराह का रूप धारण कर मेरे भाई को मारा था। हिरण्यकश्यप नृसिंह पर टूट पड़ा।

लेकिन भगवान् नृसिंह के सामने वह क्या कर पाता? भगवान नृसिंह ने हिरण्यकश्यप को दबोच लिया। नृसिंह ने उसे द्वार की दहलीज पर अपनी गोद में लिटा दिया। फिर अपने तेज नाखून उसके पेट में गहरे गाड़ कर उसका पेट फाड़ दिया और इस प्रकार हिरण्यकश्यप का अन्त हो गया।

यह पूरा दृश्य दरबार में उपस्थित सभी लोग स्तब्ध होकर देख रहे थे। अपने राजा का दुर्दान्त देख उन्होंने भगवान् नृसिंह पर आक्रमण कर दिया। लेकिन पलक झपकते ही नृसिंह ने सभी की जीवन लीला समाप्त कर दी।

सभी शत्रुओं का नाश कर नृसिंह राक्षसी सिंहासन पर बैठ गये और देवताओं ने स्वर्ग से पुष्पवर्षा की तथा गंधर्वों ने दैवी गीत गाये। अप्सराओं ने आनन्दित होकर नृत्य किया। लेकिन नृसिंह का क्रोध अभी भी शांत नहीं हुआ। साक्षात् विष्णु की पत्नी लक्ष्मी भी उनके पास जाने से डर रही थीं।

हिरण्यकश्यप को ब्रह्मा से अमरत्व का वरदान प्राप्त हुआ था और भगवान नृसिंह ने सभी वचनों का पालन करते हुए उसकी लीला समाप्त की थी। क्योंकि उस समय न दिन था और न रात्रि। वह संधि काल था। स्थान भी न घर के भीतर था और न बाहर, वह घर की दहलीज थी। उसे न आकाश में मारा गया, न जमीन पर। वह स्थान था भगवान् की गोद। उसकी मृत्यु भी किसी अस्त्र-शस्त्र से नहीं, नृसिंह के नाखून से हुई। जिसे ब्रह्मा ने पैदा किया उसने नहीं मारा, बल्कि स्वयं विष्णु ने नृसिंह के रूप में उसे समाप्त किया। यही आश्चर्य था।

नन्हें प्रह्लाद ने भक्तिभाव से भगवान् नृसिंह के चरणों में नमन किया। प्रह्लाद के कोमल स्पर्श से भगवान् शांत हुए। नृसिंह ने जयजयकार के उद्घोष के बीच प्रह्लाद को प्रेमपूर्वक उठा लिया।

भगवान् नृसिंह के स्पर्श से प्रह्लाद गद्गद हो उठा। उसके सभी दुःख समाप्त हो गये और उसे सर्वश्रेष्ठ ज्ञान भी प्राप्त हुआ। भगवान् नृसिंह की स्तुति करते हुए उसने कहा – 'हे भगवन्! तुम कृपालु हो, पूरे विश्व के रक्षक हो। तुमने अन्याय का अन्त किया है। कृपया आप क्रोध छोड़ दें और न्याय की रक्षा करें।' नृसिंह ने प्रसन्न होकर कहा – 'तुम जो चाहो, वर माँग लो।'

प्रह्लाद ने विनम्रता से कहा – 'मेरे हृदय में भगवान् के प्रति प्रेम, श्रद्धा व भक्ति और गहरी हो, यही चाहता हूँ।' नरहरि ने कहा – 'तथास्तु, अब तुम कुछ दिनों के लिये यहाँ शासन करो। जो न्यायपूर्ण हो वही करो, ताकि लोग सुख-शांति से रहें। अन्त में तुम मुझ में ही विलीन हो जाओगे।'

कथा के पीछे कथा

भक्त प्रह्लाद की इस कथा के पीछे भी एक रोचक कथा है।

हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्ष भगवान् विष्णु के इतने कट्टर विरोधी क्यों थे? कथा ऐसी है –

महाविष्णु ने जय और विजय नाम के दो द्वारपाल नियुक्त किये थे। उन्हें लगता था कि वे वैकुण्ठ के द्वारपाल हैं, अतः भगवान् के

बहुत समीप हैं। इस बात का उन्हें अभिमान होने लगा। एक बार चार बालक - साधु सनक, सनंदन, सनतकुमार व सनतसुजाता विष्णु के दर्शन हेतु आये। अपनी योगशक्ति से उन्होंने वैकुण्ठ में प्रवेश किया था। द्वारपाल जय-विजय ने उन्हे रोका और उनके साथ उद्दण्डता से व्यवहार किया। साधु बालकों ने क्रोधित होकर उन दोनों को श्राप दिया, 'भगवान् के पास रहते हुए भी तुम इतने उद्दण्ड व अहंकारी हो, अतः अब तुम पृथ्वी पर ही भटकते रहोगे।'

द्वारपाल भय से काँपने लगे। भगवान् नारायण से क्षमा-याचना करने लगे। लेकिन भगवान् ने कहा - 'ये आत्मसंयमी तथा विशुद्ध लोग हैं, उनके वचन सत्य होकर ही रहेंगे। अत: जब तक तुम्हें सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त नहीं होगा तुम भटकते ही रहोगे। तुम अब पृथ्वी पर जाओ और ज्ञान प्राप्त करने के बाद ही वापस लौटो।'

द्वारपालों ने फिर पूछा, 'यदि अज्ञान में हम भगवान् को भूल जाएँगे तो हमारा क्या होगा?' भगवान् ने दयापूर्वक जय-विजय से पूछा, 'तुम क्या पसंद करोगे? सात जन्मों तक मेरे भक्त के रूप में रहना या तीन जन्मों तक मेरे शत्रु के रूप में रहना।' द्वारपालों ने कहा - 'हे भगवान्, हम आपका वियोग नहीं सह सकते। अत: हम आपके पास शीघ्र आ सकें, इसलिये हमें तीन जन्मों तक आपका शत्रु होना स्वीकार्य है।'

बाद में जय-विजय स्वर्ग से पृथ्वी पर आ गिरे और हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्ष के रूप में पैदा हुए। वे भगवान् के शत्रु थे और भगवान् के पास वापस जाने का हठ कर रहे थे। भगवान् विष्णु ने

वराह और नृसिंह का रूप लेकर दोनों का अन्त किया। इसके बाद कृतयुग में वे ही रावण और कुंभकर्ण के रूप में हुए और भगवान श्रीराम के हाथों मृत्यु को प्राप्त हुए। द्वापर युग में वे दोनों शिशुपाल व दंतवक्र के रूप में पैदा हुए और भगवान् श्रीकृष्ण के हाथों मृत्यु पाई। इस प्रकार वे बाल साधुओं के श्राप से मुक्त हुए।

प्रह्लाद को आशीर्वाद देने के बाद भगवान् नृसिंह चले गये। बाद में प्रहलाद ने राजसिंहासन पर बैठकर तीनों लोकों पर राज्य किया। अपने सद्गुणों के कारण वह बहुत लोकप्रिय थे। ऐसे पुण्यवान और सात्विक राजा के राज्य मे तीनों लोक आनंदित हुए। शान्ति और विशुद्धता के वातावरण से सभी ओर सद् चरित्र व्याप्त था। इन्द्र को परास्त कर उसकी राजधानी अमरावती को भी प्रह्लाद ने अपने राज्य में समाहित कर लिया। इन्द्र के पास अब कुछ नहीं रहा। वह देवगुरु बृहस्पति के पास पहुँचा और उसने कहा – 'गुरुदेव मैं सर्वश्रेष्ठ को कैसे प्राप्त कर सकता हूँ। मेरे दिल में यह मंगल कामना है।' गुरुदेव ने कहा – 'ज्ञात अर्थात् मुक्ति का मार्ग ही सबसे अच्छी बात है।' इन्द्र ने पूछा – 'इसके लिये कौन-सा मार्ग है?' गुरुदेव बोले – 'तुम राक्षसों के गुरु शुक्राचार्य के पास जाओ, वह तुम्हें सिखाएँगे।'

इन्द्र शुक्राचार्य के पास पहुँचे। शुक्राचार्य ने उन्हें मुक्ति का मार्ग सिखलाया। बाद में इन्द्र ने शुक्राचार्य से पूछा – 'क्या इससे भी कोई श्रेष्ठ बात है?' गुरुदेव ने कहा – 'जिस प्रह्लाद ने तुम्हें परास्त किया, उसी के पास जाओ। वह तुम्हें बताएगा।'

इन्द्र बने प्रह्लाद के शिष्य

यह सुनकर इन्द्र चकित हो गये। वह प्रह्लाद के पास आये। प्रह्लाद ने उनका स्वागत किया। इन्द्र ने पूछा - 'हे दानवराज, ऐसी कौन-सी बात है जिससे सर्वश्रेष्ठ की प्राप्ति होगी।' प्रह्लाद ने कहा - तुम्हें सिखाने के लिये मेरे पास समय कहाँ है?'

लेकिन इन्द्र ने कहा–'हे राजा, तुम्हें जब कभी समय मिले, मुझे थोड़ा उपदेश दे दिया करो। तुम्हीं से मैं सर्वश्रेष्ठ मार्ग सीखना चाहता हूँ।' प्रह्लाद ने प्रार्थना स्वीकार की। उस दिन से इन्द्र प्रह्लाद का शिष्य बन गया। धीरे-धीरे उसे ज्ञान प्राप्त हुआ। इन्द्र की सेवा से गुरु प्रह्लाद प्रसन्न हो गया। एक दिन इन्द्र ने पूछा–'महाराज, आपने तीनों लोक कैसे जीते? इसका रहस्य क्या है?'

प्रह्लाद यह नहीं जान पाया कि उसके सामने ब्राह्मण बनकर बैठा हुआ धूर्त इन्द्र ही है और वह उसका स्थान लेना चाहता है।

प्रह्लाद ने कहा – 'विशुद्ध चरित्र के कारण ही मैं तीनों लोकों पर विजय प्राप्त कर सका। मैं शुक्राचार्य की सेवा करता हूँ। बड़ों की आज्ञा का पालन करता हूँ और उनके मार्गदर्शन में कार्य करता हूँ। मैं सभी इन्द्रियों पर संयम रखता हूँ। इसी से मुझे सर्वश्रेष्ठ की प्राप्ति हुई है।'

प्रह्लाद को प्रसन्नता थी कि उसका शिष्य सर्वश्रेष्ठ की प्राप्ति हेतु जिज्ञासा रखता है। अतः प्रसन्न होकर उसने ब्राह्मण को वर माँगने के लिये कहा। इन्द्र यह सुनकर बहुत आनन्दित हुआ। उसने

कहा – 'हे राजन! यदि आप वास्तव में मुझसे संतुष्ट हैं तो कृपया मुझे अपना चरित्र दे दें।'

यह सुनते ही प्रह्लाद विचलित हो गया। वह जानता था कि उसका विशुद्ध चरित्र यदि एक बार गया तो उसकी शक्ति का नाश हो जायेगा। लेकिन वह अपने वचन को भी नहीं तोड़ना चाहता था। उसने इन्द्र को 'तथास्तु' कहा। ब्राह्मण इंद्र के जाते ही प्रह्लाद के पास से चारित्र्य, सद्व्यवहार, सत्य और शक्ति सभी कुछ चले गये। वे सब इन्द्र को प्राप्त हुए। फिर भी प्रह्लाद दुखी नहीं हुआ। शान्त मन से वह भगवान् नृसिंह के सामने उपस्थित हो गया।

भक्त प्रह्लाद राक्षस पुत्र था, फिर भी उनकी भक्ति में इतनी शक्ति थी कि साक्षात् विष्णु को उसके सामने अवतरित होना पड़ा। देवताओं के राजा इन्द्र को भी ज्ञान-प्राप्ति हेतु उससे याचना करनी पड़ी।

अत: किसी व्यक्ति का कुल उतना महत्वपूर्ण नहीं। आयु कितनी है, यह भी महत्वपूर्ण नहीं। महत्वपूर्ण है तो केवल विशुद्ध मन, निष्कलंक चरित्र और भक्तिभाव। यही श्रेष्ठत्व का प्रतीक है।